कौशल विकास एवं व्यावसायिक शिक्षा

कुछ चिंताएं

फिरोज अहमद

“शिक्षार्थी को समाज में उपलब्ध विभिन्न अवसरों के जरिए जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना शिक्षा का एक लक्ष्य हो सकता है। लेकिन किस उम्र और वक्त में इसे स्थान दिया जाए यह विचारणीय विषय है। फिलहाल व्यावसायिक शिक्षा पर दिया जा रहा जोर शिक्षा के सामान्य लक्ष्यों की उपेक्षा का संदेश पैदा करता है। यह लेख कौशल विकास ओर व्यावसायिक शिक्षा पर दिए जा रहे अतिशय जोर से उभरने वाली चिन्ताओं को साझा करता है।”

भूमिका

सितम्बर 2011 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा योग्यता रूपरेखा (National Vocational Education Qualification Framework) के लिए आदेश जारी किए। कौशल विकास पर मंत्रीमंडलीय समिति के 19 दिसम्बर 2013 के निर्णय के बाद वित्त मंत्रालय ने राष्ट्रीय कौशल योग्यता रूपरेखा (National Skills Qualifications Framework) की विज्ञप्ति जारी की। अखिल भारत तकनीक शिक्षा परिषद् (AICTE) ने व्यावसायिक शिक्षा व प्रशिक्षण को अपनी वेबसाइट पर इन शब्दों में परिभाषित किया है, व्यावसायिक शिक्षा ‘‘अधिगमकर्ताओं को हाथ के काम या व्यावहारिक गतिविधियों पर आधारित नौकरियों के लिए तैयार करती है, जो कि पारंपरिक रूप से गैर-अकादमिक हैं...। इसे तकनीकी शिक्षा भी कहा जाता है क्योंकि अधिगमकर्ता किसी खास वर्ग की तकनीकों या तकनीक में सीधे महारत हासिल करता है।’’ (स्व-अनुदित)

भारत में कौशल विकास का व्यावसायिक शिक्षा केन्द्रित विचार राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 में भी उल्लिखित है। कुछ विद्वानों द्वारा इसे गांधी की बुनियादी शिक्षा से भी जोड़ने की कोशिश की जाती है जिसमें काम को शिक्षा के ज्ञानमीमांसीय आधार के रूप में स्थापित किया गया था। यह महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने प्रस्तावित किया था कि 1986 तक दसवीं से पूर्व कुल नामांकन का लगभग 20 प्रतिशत व दसवीं से ऊपर के कुल नामांकन का 50 प्रतिशत प्रवेश अंशकालिक अथवा पूर्णकालिक व्यावसायिक कोर्स में हो (पृ. 682)। इसे उस समय देश की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में भी देखा-समझा जा सकता है। अगर आज भी हम एक बड़े समूह को इस दिशा में भेजने की तैयारी कर रहे हैं तो आखिर इसे कैसे समझा जाए?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में काम व जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करना है व उन विद्यार्थियों को विकल्प उपलब्ध कराना है जो बिना विशेष रुचि या उद्देश्य के उच्च शिक्षा हासिल करना चाहते हैं (पृ. 16)।

वर्तमान संदर्भ

व्यावसायिक शिक्षा पर हम अपनी चिंताएं व सवालों को रखने के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 की सहायता लेंगे। भारतीय समाज व्यवस्था की ऐतिहासिक विषमता के प्रति संवेदनशीलता दर्ज करते हुए इसमें रेखांकित किया गया है कि ''बंधुआ मजदूरी उत्पीड़नों में सबसे घटिया उत्पीड़न है। इसलिए इसकी पर्याप्त तैयारी होनी चाहिए कि काम को पाठ्यचर्या का अहम् हिस्सा बनाया जाए तो उसमें यह स्थिति नहीं हो कि वह काम बच्चों को लादा हुआ लगे और उनके सीखने की क्षमता इससे प्रभावित हो। रोज़-रोज़ की बार-बार दोहराई जाने वाली गतिविधियां जो काम के उत्पादन के नाम पर या काम को जाति या लिंग के आधार पर बांटने के लिए चलाई जा सकती हैं, को सख्ती से रोका जाना चाहिए (पृ. 66)।'' इस संदर्भ में श्रम मंत्रालय द्वारा व्यावसायिक शिक्षा/कौशल विकास के रूढ़िगत व भेदभावजनक आग्रहों के खतरों का ताज़ा उदाहरण महत्वपूर्ण है जिसमें मैला ढोने तक को कौशलों के रूप में वर्गीकृत किया गया था (*द हिन्दू*, अगस्त 4, 2015) (हालांकि भारी विरोध एवं आपत्तियों के बाद मंत्रालय को माफी मांगते हुए इसे अपनी वेबसाइट से हटाना पड़ा)।

सरकारी स्तर पर इसके हालिया व्यापक प्रचार-प्रसार को लेकर शिक्षकों के कुछ गंभीर संदेहों को भी समझना जरूरी है। उदाहरण के लिए, दिल्ली के एक सार्वजनिक स्कूल की चौथी कक्षा की छात्राओं ने अपनी अभिलाषा में डॉक्टर, शिक्षक, वकील, अफसर, पायलट जैसी भूमिकाएं गिनाईं। यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ ऐसी छात्राओं ने फुटपाथ पर सामान बेचना जैसे काम भी गिनाए जिनके माता-पिता स्वयं ये काम करते हैं। अर्थात् जहां अधिकतर बच्चे इस उम्र में अपनी अभिलाषा को ज़मीन पर उतारने पर लगी सामाजिक-आर्थिक सीमाएं नहीं पहचान पा रहे हैं, वहीं कुछ को बचपन में ही इस कड़वी हकीकत की गहरी समझ हो गई है। इस संदर्भ में सवाल यह है कि हम शिक्षा के उद्देश्य के लिए किसे बेहतर स्थिति मानें- बच्चों का यथार्थ से परे रहकर अपनी रुचि व आकांक्षाएं निर्मित करना या व्यवहारिकता में ढलकर अपनी कल्पना के क्षितिज को समेट देना? यह सवाल इसलिए और प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि इस नीति का दबाव सरकारी स्कूलों पर ही अधिक पड़ेगा और इसे उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों को ही झेलना होगा। आज भी स्कूलों के बाद के जो व्यावसायिक शिक्षा के संस्थान हैं, जैसे आईटीआई, पॉलिटेक्निक आदि, वहां पढ़ने वाले विद्यार्थियों की अधिकांश संख्या सरकारी स्कूलों से ही आती है। निजी स्कूलों के विद्यार्थी प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाते हैं तो सरकारी स्कूलों के विद्यार्थी विश्वविद्यालयों के मुक्त/दूरस्थ शिक्षा केन्द्रों में पढ़ने को विवश हैं। यह सच है कि इस विभाजन के पीछे सिर्फ अंकों के अंतर नहीं है बल्कि यह एक वर्गीय परिघटना है जिसमें ऊंचे अंक पाने वाले मेहनतकश वर्गों के विद्यार्थी भी नियमित अकादमिक उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश नहीं ले पाते हैं।

समस्या

जब किसी भी सिद्धान्त के अनुसार काबिलियत को वर्गीय (या जातिगत या लैंगिक आदि) आधार पर नैसर्गिक रूप से कम-ज्यादा प्रस्तावित नहीं किया जा सकता है, तब जाहिर है कि अकादमिक उच्च शिक्षा व व्यावसायिक, कौशल आधारित पाठ्यक्रमों के बीच विद्यार्थियों की सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित वर्तमान बंटवारे को स्वाभाविक नहीं माना जा सकता है। इसके विपरीत यह बहुपरती विभाजन शिक्षा व सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में घोर अन्याय व असमानता का ही द्योतक है। फिर इसे दूर किए बगैर व्यावसायिक व कौशल विकास शिक्षा का दबाव इस विकृति में बढ़ोतरी ही करेगा। दिल्ली सरकार के कई स्कूलों में कौशल विकास के नाम पर 11वीं, 12वीं के विद्यार्थियों को दो व्यावसायिक विषय पढ़ने को दिए जा रहे हैं। क्या यह दिल्ली में सिर्फ 11वीं और 12वीं के विद्यार्थियों के लिए ही लागू है या इससे पहले भी आरंभ हो जाता है? इसके परिणामस्वरूप कई छात्र विश्वविद्यालय जैसे उच्च शिक्षा के संस्थानों

में प्रवेश के लिए आवेदन करने की स्थिति में ही नहीं रहेंगे क्योंकि जिन विषयों के प्राप्तांकों के आधार पर विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु वरीयता सूची बनाई जाती है वे विषय उन्होंने विद्यालय स्तर पर नहीं पढ़े होंगे। इस तरह स्कूल अपने विद्यार्थियों के समक्ष विविध संभावनाओं को और व्यापक बनाने और उनके समस्त कल्याण-अधिकारों की रक्षा करने के अपने दायित्व से पलट रहे हैं। इससे बच्चों व मजदूर तबकों का सार्वजनिक स्कूलों पर से रहा-सहा विश्वास भी उठ जाएगा।

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेज़ों, संधियों व कानूनों के अनुसार बच्चे की परिभाषा में 18 साल से कम उम्र के सभी व्यक्ति शामिल हैं। बाल अधिकार संरक्षण के तमाम प्रावधान ही नहीं बल्कि वयस्क अधिकार/दायित्व की शर्तों के पीछे भी यह मान्यता है कि 18 साल तक व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक रूप से इतना परिपक्व नहीं माना जा सकता कि उस पर विवाह, मतदान, सम्पत्ति जैसी ज़िम्मेदारियों या स्वतंत्रता का भार डाला जाए। इसी दर्शन की तर्ज़ पर 18 साल तक के सभी बच्चों के लिए भेदभाव रहित पाठ्यचर्या वाली शिक्षा की ज़रूरत प्रस्तावित की जाती है ताकि पेशे या व्यवसाय संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय वे एक परिपक्वता प्राप्त कर लेने के बाद ही लें। अगर स्कूलों में कौशल सिखाने का औचित्य यह दिया जाए कि विद्यार्थियों के सामने उच्च शिक्षा के अवसर खुले रहेंगे और उन्हें व्यवसाय में जबरदस्ती नहीं धकेला जाएगा तो भी हमारे सामने ये प्रश्न उठते हैं- क्या इस बहुपरती एवं असमान सामाजिक-शैक्षिक व्यवस्था में अवसरों की समानता की सुनिश्चितता पर भरोसा किया जा सकता; कौशल-विशेष शामिल करने का फैसला अकादमिक आधार पर लिया जाएगा या औद्योगिक आपूर्ति के आधार पर एवं स्कूलों के चरित्र/स्वरूप पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। एक उम्र से पहले ही बच्चों को व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में धकेलने का मतलब है उनकी मानसिक व आर्थिक-सामाजिक मजबूरी/कमजोरी का फायदा उठाकर उन्हें एक पूर्व-निर्धारित पेशे में धकेल देना।

ज़मीनी हकीकत

स्कूलों में चल रहे व्यावसायिक विषयों की सूची भी बहुत भरोसा नहीं जगाती है। इसमें ब्यूटी ऐंड हेयर, गारमेंट कंस्ट्रक्शन, फूड सर्विस, ऑटोशॉप रिपेयर, ए.सी. एण्ड रेफ्रीजरेशन, इलेक्ट्रिकल मशीन आदि विषय हैं। इनमें से कई स्पष्टतः लैंगिक आधार पर छात्राओं के स्कूलों तक ही सीमित हैं, वहीं कुछ अन्य कोर्स मात्र छात्रों के स्कूलों में ही उपलब्ध हैं। जब गृह विज्ञान का अब काफी मान्य हो चुका विषय भी इस लैंगिक भेद में जकड़कर छात्राओं के लिए 'आरक्षित' हो चुका है तब इन विषयों की लैंगिक रूढ़िबद्धता पर प्रश्न उठना लाज़िमी है। विद्यार्थी यह भी बताते हैं कि इनमें से कई विषयों की पाठ्यपुस्तक तक उपलब्ध नहीं है और जिन कौशलों को विकसित करने का नारा दिया जा रहा है उनके लिए किसी प्रकार की प्रयोगशाला का प्रबंध भी नहीं है। ऐसी स्थितियों में विद्यार्थियों द्वारा इन विषयों से पीछा छुड़ाने के लिए स्कूल बदलने या सरकारी स्कूल छोड़कर निजी स्कूल में प्रवेश लेने के उदाहरण भी मिलते हैं।

सरकारी स्कूलों में विज्ञान की अनुपलब्धता का आलम यह है कि दसवीं कक्षा के बाद दिल्ली सरकार के केवल पांच प्रतिशत विद्यार्थी ही विज्ञान धारा में प्रवेश ले पाते हैं। लगभग इतने ही विद्यार्थी व्यावसायिक धारा में पढ़ते हैं। पर महत्वपूर्ण यह है कि एक ओर विद्यार्थी विज्ञान नहीं मिलने पर निजी स्कूल में प्रवेश लेते हैं (न कि व्यावसायिक धारा हेतु) और दूसरी ओर अब कला व वाणिज्य की धाराओं के विद्यार्थियों पर भी व्यावसायकि विषय अनिवार्य रूप से थोपे जा रहे हैं। इस तरह के विषयों को नौवीं कक्षा से ही लाने की योजनाएं सार्वजनिक पटल पर आ चुकी हैं जिनसे कि इस नीति से संबंधित प्रश्न और गहरा जाएंगे। दिल्ली सरकार के स्कूलों में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुल 70 में से लगभग 50 विषय व्यावसायिक स्वरूप के हैं। देश के 'विकास' के लिए विज्ञान की शिक्षा के प्रचार-प्रसार की जरूरत पर चिंता व्यक्त करती सरकारों की नीयत पर तब शक पैदा होता है जब वे चंद चुने हुए 'मेधावी' छात्रों को छांटकर उनकी निजी कोचिंग संस्थानों की फीस प्रायोजित करती हैं पर सभी स्कूलों में विज्ञान की धारा और प्रयोगशालाएं उपलब्ध कराने की नीति नहीं बनातीं। व्यावसायिक कोर्स पर बढ़ता बल इसी नीति का दूसरा पक्ष है। इससे उन आलोचनाओं को बल मिलता है जिनके अनुसार व्यावसायिक शिक्षा के फैलाव की नीति उच्च शिक्षा पर दबाव कम करने, वर्गीय-जातीय खाई को बरकरार रखने और वैश्विक पूंजी के लिए सस्ता श्रम उपलब्ध कराने का ज़रिया है।

गहराते सवाल

एक चिंता यह भी है कि स्कूलों को उद्योग जगत की आवश्यकताओं के अनुसार ढालकर शिक्षा को पूंजी का पिछलग्गू बना दिया जा रहा है। यह सरासर शिक्षा के उदात्त चरित्र एवं मूल्यों पर कुठाराघात है। ऐसा प्रतीत होता है कि अम्बानी-बिरला की बहु-आलोचित रपट को भारत की जनता व शिक्षाविदों ने भले ही खारिज़ कर दिया हो पर एक डरावनी संभावना को सच करते हुए इस रपट के दर्शन को ही लागू किया जा रहा है। स्कूलों में पढ़ाने वाले साथियों की इस बात को लेकर चिंता भी वाज़िब है कि व्यावसायिक विषयों को स्कूलों में शामिल व प्रोत्साहित करने से स्कूलों का बौद्धिक-अकादमिक चरित्र कमज़ोर पड़ेगा। व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकारों के पास नए आईटीआई व पॉलिटेक्निक खड़े करने व वर्तमान संस्थानों को सुदृढ़ करने का विकल्प भी है। इस विकल्प को नजरअंदाज करके स्कूलों व उनके विद्यार्थियों पर इन विषयों को थोपने से स्कूलों के चरित्र के विकृत होने का खतरा भी है।

हालांकि शिक्षा व प्रशिक्षण के बीच के भेद को लेकर एक दार्शनिक जद्दोजहद भी रही है। एक ओर कुछ विद्वानों का मानना है कि प्रशिक्षण का मशीनी, तकनीकी व नीरस स्वरूप इसे शिक्षा के वृहद् बौद्धिक स्वरूप से भिन्न ही नहीं बल्कि निम्न कोटि का प्रयोजन भी सिद्ध करता है। वहीं दूसरी ओर श्रम व जाति के ऐतिहासिक उत्पीड़न के अध्येता यह कहते हैं कि दोनों के बीच का यह भेद सत्ता की विषमता को दर्शाता है और इसे खत्म करने की ज़रूरत है। जहां यह आग्रह है कि अकादमिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा के मुकाबले, मुक्तिकामी होती है, वहीं यह आलोचना भी की जाती है कि अकादमिक शिक्षा अनिवार्यतः मुक्तिकामी नहीं होती और जिसे हम व्यावसायिक शिक्षा कहते हैं उसमें भी मुक्ति की संभावना रची जा सकती है। इसके पक्ष में चीनी सांस्कृतिक क्रांति व गांधी की बुनियादी शिक्षा के उदाहरण दिए जा सकते हैं, मगर व्यावसायिक व कौशल विकास की वर्तमान नीति का आर्थिक संदर्भ यह इशारा करता है कि इसे श्रम का शोषण समाप्त करने के लिए, बौद्धिक व शारीरिक श्रम के बीच की असमानता खत्म करने की नीयत से और ज्ञान के स्रोत के रूप में श्रम की मौलिकता को स्थापित करने के लिए नहीं लाया जा रहा है।

यह रोचक है कि इस लोकप्रिय दलील के विपरीत कि देशों के आर्थिक विकास के लिए व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार जरूरी है, रपटें व आंकड़े यह दिखाते हैं कि इस विकास का संबंध भी सामान्य शिक्षा के सार्वभौमीकरण से ही रहा है। शोध यह भी बताते हैं कि कौशल संबंधित अधिगम तभी अर्थवान व गहरा हो पाता है जब उसका आधार मजबूत सामान्य शिक्षा की नींव पर खड़ा किया गया हो। इसे एक विडम्बना ही कहा जाएगा कि व्यावसायिक शिक्षा स्वयं में व्यक्ति या देश किसी भी स्तर पर मात्र व्यावसायिक या आर्थिक विकास के लिए भी कारगर नहीं रही है (यूनेस्को, 2015; हैगर एवं हाइलैण्ड, 2003)।

व्यावसायिक शिक्षा एवं कौशल विकास के प्रति आशंका का खुलासा हमें उन रपटों से भी प्राप्त होता है जो बताती हैं कि औद्योगिक क्षेत्रों में स्थापित नामी-गिरामी राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तक न सिर्फ 'कुशल' व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर्मचारियों को अप्रशिक्षित कर्मचारियों के बराबर ही वेतन देती हैं, बल्कि उन्हें भी ठेके की अनिश्चितता पर लटकाए रखती हैं। ऐसे में इन कामगारों का यह महसूस करना व कहना उचित ही होगा कि उन्हें समझ में आ गया है कि असल में शिक्षा की कोई कीमत नहीं है। ◆

संदर्भः

हैगर, पी. एवं हाइलैण्ड, टी. (2003), वोकेशनल एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग। दि ब्लैकवेल गाइड टू दि फिलोसॉफी ऑफ एजुकेशन में, पृष्ठ 271-287।

यूनेस्को (2015), एजुकेशन फॉर ऑलः ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट, यूनेस्को।

लेखक परिचयः फिरोज अहमद, दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में बतौर शिक्षक कार्यरत हैं।